कृष्णमूर्ति के संकलित लेखन से: 1958-1960: Volume -11

सीखने के बारे में, 1958

जे. कृष्णमूर्ति

हमें यह लगता है कि जैसे-जैसे हम बढ़ते संकटों और समस्याओं का सामना कर रहे हैं, सम्पूर्ण रूप से एक अलग प्रकार की नैतिकता, आचरण और क्रिया जो जीवन जीने की पूरी प्रक्रिया की समझ से उत्पन्न हुई है, हमारी जरूरी आवश्यकता बन गई है। हम इन मुद्दों का राजनैतिक और संगठनात्मक तरीकों, आर्थिक पुनर्समायोजन और सुधारों के द्वारा हल करने की कोशिश करते हैं। इन तरीकों में से कोई भी अस्तित्व की जटिल मानवीय समस्याओं को हल नहीं कर सकेगा, हालाँकि वह अस्थायी राहत प्रदान कर सकता है। सभी सुधार, चाहे वे कितने ही व्यापक और स्थायी लगते हों, स्वयं में और अधिक उलझन और अधिक सुधार के उत्पादक लगते हैं। मनुष्य होने की पूरी जटिलता को समझे बिना, सुधार चाहे कितने ही जरूरी हो, आगे के सुधार के लिए भ्रामक मांगों को लाएगा। सुधारों का कोई अन्त नहीं है, और इस दिशा में बढ़ना कोई बुनियादी समाधान नहीं है।

राजनैतिक, आर्थिक, या सामाजिक क्रान्तियाँ भी कोई समाधान नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने या तो भयावह निरंकुशता को जन्म दिया है या एक अलग समूह के हाथों में शक्ति चली गयी है। कभी भी, इस तरह की क्रान्तियाँ उलझन और संघर्ष से बाहर निकलने का रास्ता नहीं हैं। लेकिन अगर हमें इस चिन्ता, संघर्ष और कुंठा की अन्तहीन श्रृंखला से बाहर निकलना है तो एक क्रान्ति है जो पूरी तरह से अलग है। इस क्रान्ति का प्रारम्भ सैद्धान्तिक या वैचारिक स्तर पर नहीं होना चाहिए। जो अन्ततः व्यर्थ सिद्ध होती है-बल्कि स्वयं मस्तिष्क के स्तर पर आमूल परिवर्तन(Radical Transformation)लेकर आना चाहिए। यह परिवर्तन उचित शिक्षा के माध्यम से ही लाया जा सकता है, मनुष्य के सम्पूर्ण विकास के द्वारा। उचित शिक्षा के माध्यम से यह क्रान्ति पूरे दिमाग में होनी चाहिए, केवल विचार में नहीं। विचार, आखिरकार, परिणाम है, कारण नहीं। स्वयं कारण में आमूल परिवर्तन होने चाहिए परिणाम में नहीं। हम परिणामों के साथ, लक्षणों के साथ छेड़छाड़ कर रहे है और हम पुराने तरीकों के विचारों, परम्पराओं और आदतों का उन्मूलन कर जीवनदायनिक(Vital), आमूल बदलाव नहीं ला रहे हैं। हम इस मुख्य सरोकार के लिए चिन्तित हैं, और यह केवल उचित शिक्षा ही कर सकती है।

अर्जित करने और सीखने की क्षमता मस्तिष्क का कार्य है। सीखने से हमारा अभिप्राय केवल स्मृति का विकास और सूचना का संग्रहण नहीं है,विश्वासों और आदर्शों से नहीं, बल्कि तथ्यों से प्रारम्भ कर, बिना किसी भ्रम के स्पष्ट और समझदारी से सोचने की क्षमता विकसित करना है। अगर विचार निष्कर्षों से पैदा हो रहे हैं तो इसमें कोई शिक्षा सीख नहीं मिलती है। केवल सूचना के अधिग्रहण मात्र, को ज्ञान कहा जाता है, तो यह सीखना नहीं है। सीखने का अर्थ है समझ के प्रति प्रेम और किसी कार्य को इसलिए करना क्योंकि आप उससे प्रेम करते हैं। सीखना तभी सम्भव हो सकता है, जब किसी तरह की जबरदस्ती ना हो। ज़बरदस्ती का अर्थ है, जब इसे प्रभाव के किसी भी रूप के द्वारा किया जाये, जैसे आकर्षण/स्नेह और धमकी के द्वारा, प्रेरक प्रोत्साहनों या विमर्श के रहस्यमयी

रूपों के द्वारा। यह सभी प्रभाव के ही रूप हैं। चर्चा के गूढ स्वरूपों अथवा फुसलाकर प्रोत्साहन का अभिप्राय दबाव ही है।

अधिकांश लोग यह सोचते हैं कि तुलना के माध्यम से सीखने को प्रोत्साहन मिलता है, जबकि तथ्य इसके विपरीत हैं। तुलना कुंठा को जन्म देती है, और केवल ईर्ष्या को बढ़ावा देती है, जिसे प्रतियोगिता कहा जाता है। अनुनय-विनय के सूक्ष्म या स्पष्ट स्वरूप सीखने को रोकते हैं और केवल भय उत्पन्न करते हैं। महत्वाकांक्षा भय को जन्म देती है। महत्वाकांक्षा व्यक्तिगत हो या उसकी पहचान सामूहिक हो, हमेशा असामाजिक होती है। तथाकथित उच्च महत्वाकांक्षा हमेशा अपने सम्बन्धों में विनाशकारी होती है।

एक अच्छे मस्तिष्क के विकास को प्रोत्साहित करना आवश्यक है, जो पूरे जीवन के कई मुद्दों से निपटने में सक्षम हो, और जो इनसे बचने की कोशिश नहीं करता है और इसलिए विरोधाभासी, निराश, कड़वा और सनकी हो जाता है। और यह जरूरी है कि इसका स्वयं का अनुकूलन, इसके उद्देश्यों और लक्ष्यों के बारे में जागरुक होना चाहिए।

चूंकि अच्छे मस्तिष्क को विकासित करना हमारे मुख्य सरोकारों में से एक है, अतः, यह बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है कि एक शिक्षक कैसे सिखा रहा है। जैसा कि शिक्षक प्रमुख रूप से मस्तिष्क की समग्रता से विकासित करने से सरोकार रखता है, न कि मात्र जानकारी देने से, उन्हें हर प्रकार के चर्चा के रूपों(form) के द्वारा, जांच-पड़ताल के लिए आमंत्रण और स्वतंत्र चिन्तन के द्वारा ज्ञान अथवा जानकारी को प्रदान करना होता है। प्राधिकार (Authority), जैसा कि जाना जाता है का सीखने-सिखाने में कोई स्थान नहीं है। शिक्षक और साथ ही साथ शिक्षार्थी, दोनों इस अनोखे रिश्ते में एक दूसरे से सीख रहे हैं, पर इसका यह मतलब नहीं है कि शिक्षक विचारधारा के सुव्यवस्थित क्रम का निरादर करता है। इस सुव्यवस्थित-क्रम को ज्ञान के निश्चयात्मक कथनों के रूप में केवल अनुशासन द्वारा ही पैदा नहीं किया जा सकता है, बल्कि अगर शिक्षक यह समझता है कि वह बुद्धिमत्ता को विकसित कर रहा है, तो स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रता का बोध होता है। यह स्वतंत्रता आप जो चाहे वह करने या केवल विरोधाभास की भावना में सोचने के लिए ना हो, बल्कि ऐसी स्वतंत्रता हो जिसमें मन को उसके स्वयं के आग्रह और इरादों के बारे में जागरुक करने में सहायता हो सके, जो विद्यार्थी के स्वयं के विचार और क्रिया से अभिव्यक्ति होती है।

एक अनुशासित मस्तिष्क कभी भी स्वतंत्र मस्तिष्क नहीं होता है, ना ही वह मस्तिष्क जिसमें दबी हुई इच्छाएँ हो कभी भी स्वतंत्र हो सकता है। केवल वही मस्तिष्क जो इच्छाओं की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझता है, स्वतंत्र है। क्या ऐसा नहीं है कि, अनुशासन हमेशा विचार और विश्वास की प्रणालियों के ढाँचे के भीतर एक आन्दोलन को प्रोत्साहित करता है। ऐसा मस्तिष्क कभी भी प्रबुद्ध होने के लिए स्वतंत्र नहीं होता। इस तरह का अनुशासन प्राधिकार के प्रति अधीनता या एक समाज के पैटर्न के भीतर कार्य करने की क्षमता प्रदान करता है, जो कि कार्यात्मक योग्यता की मांग करता है, बौद्धिकता की नहीं जिसकी अपनी स्वयं की क्षमता है। ऐसा मस्तिष्क जिसने अपनी क्षमता केवल

स्मृति के माध्यम से विकसित की है, जैसे कि आधुनिक मशीनें, कम्प्यूटर, जो आश्चर्यजनक योग्यता और सटीकता के साथ कार्य करता है।

प्राधिकार केवल कुछ दिशाओं में सोचने के लिए ही सुझा सकता है। निष्कर्षों में सोचना और कुछ निश्चित दिशाओं में निर्देशित किया जाना, चिन्तन बिल्कुल भी नहीं है; यह केवल एक मानव मशीन की तरह काम करना है, यह विचारहीन असन्तोष को जन्म देता है, जो कि अपने साथ निराशा, दुख आदि को लेकर आता है। और हमारा सरोकार प्रत्येक मनुष्य के उसके उच्चतम और परिपूर्ण क्षमता के सम्पूर्ण विकास के लिए है। उस उच्चतम क्षमता तक नहीं, जो एक अवधारणा के रूप में एक शिक्षक के दृष्टिकोण में होती है, बल्कि उस क्षमता तक जिस तक कोई भी व्यक्ति पुष्पित व पल्लवित होने में सक्षम हो सकता है।

तुलना की कोई भी भावना एक व्यक्ति के इस परिपूर्ण पल्लवन को रोकती है, चाहे वह एक वैज्ञानिक के रूप में हो अथवा एक माली के रूप में। लेकिन जब कोई तुलना नहीं होती है तो एक माली की परिपूर्ण क्षमता एक वैज्ञानिक परिपूर्ण क्षमता है, लेकिन जब तुलना सामने आती है, तो असहमति और ईर्ष्यापूर्ण प्रतिक्रियाएँ होती हैं, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच संघर्ष उत्पन्न करती है। प्रेम तुलनात्मक नहीं है। दुःख की तरह इसकी तुलना अधिक या कम से नहीं की जा सकती। प्रेम की ही तरह, दुःख दुःख है, चाहे वह गरीब में हो या अमीर में।

एक व्यक्ति का परिपूर्ण विकास बराबरी का समाज बनाता है। केवल आर्थिक या कुछ आध्यात्मिक स्तर पर समानता लाने के लिए वर्तमान सामाजिक संघर्ष का कोई भी अर्थ नहीं है। समानता लाने के लिए सामाजिक सुधार असामाजिक गतिविधियों के अन्य रूपों को जन्म देते हैं। उचित शिक्षा के साथ सामाजिक और अन्य सुधार की कोई आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि ईर्ष्या अपनी तुलनात्मक क्षमताओं के साथ खत्म हो जाती है।

यहाँ हमें कार्य और हैसियत(status) के बीच अन्तर करना होगा। हैसियत, अपनी सभी भावनात्मकता और पदानुक्रमित प्रतिष्ठा के साथ केवल उच्च और निम्न के रूप में कार्य की तुलना के माध्यम से उत्पन्न होती है। जब प्रत्येक व्यक्ति अपनी परिपूर्ण क्षमता तक पल्लवित होता है, तो हैसियतऔर कार्य के बीच कोई विभाजन नहीं होता है, उस क्षमता की अभिव्यक्ति केवल एक शिक्षक अथवा एक प्रधानमंत्री के रूप में होती है और इसलिए हैसियत अपना दंश खो देती है। क्रियात्मक या तकनीकी क्षमता को अब बी.ए. या पीएच.डी. के माध्यम से पहचाना जाता है; लेकिन चूंकि हमारा सरोकार मानव के सम्पूर्ण विकास के लिए है, इसलिए व्यक्ति चाहे अपने नाम के साथ इस तरह के सम्बोधन जोड़े अथवा नहीं, लेकिन उसमें जैसा वह चाहे डिग्री प्राप्त करने अथवा प्राप्त नहीं करने की क्षमता होगी। उसकी क्षमता का मापन डिग्री से नहीं किया जाता लेकिन वह खुद अपने लिए अपनी क्षमताओं को जानेगा और उसकी क्षमता की अभिव्यक्ति वह आत्मकेन्द्रित आत्मविश्वास नहीं ला पाती है, जिसका जन्म केवल तकनीकी क्षमता से होता है, ऐसा आत्मविश्वास तुलनात्मक है, और इसलिए असामाजिक है। तुलना का अस्तित्व केवल उपयोगितावादी(Utilitarian) प्रयोजनों के लिए है, किन्तु यह शिक्षक के लिए नहीं है कि वह क्षमताओं में विभेद करे और कम या ज्यादा मूल्यांकन करें।

चूंकि हमारा सरोकार व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए हैं, अतः विद्यार्थी को शुरुआत में अपने स्वयं के विषय नहीं चुनने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि वह स्वयं चयन करता है, तो उसका चयन तत्कालिक सुख और पूर्वाग्रहों को पाने के आधार पर होगा और जिसे करना सबसे आसान है; यदि वह स्वयं चयन करता है तो वह किसी समाज विशेष की तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुसार चुनाव करेगा। लेकिन जब हमारा सरोकार प्राथमिक चीजों और उसको विकसित करने से सम्बन्धित हों तो वह स्वाभाविक रूप से पढ़ने और उत्तीर्ण होने के लिए सरलतम विषय का नहीं, बल्कि वह यह चुनाव करेगा कि वह कैसे अपनी क्षमताओं को पूर्णतम और उच्चतम सीमा तक अभिव्यक्त कर सकता है। हम जीवन के कई मुद्दों से पूर्ण रूप में इसके सभी मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक और भावनात्मक समस्याओं का सामना करने से सरोकार रखते हैं। चूंकि विद्यार्थी को प्रारम्भ से ही जीवन को समग्र रूप में देखने में मदद की जाती है, तो वह इससे भयभीत नहीं होगा।

किसी भी समस्या का पूर्ण रूप में सामना करने की क्षमता ही बुद्धिमत्ता है। विद्यार्थियों को अंक या ग्रेड दे देना बुद्धिमत्ता विकसित नहीं करता। इसके विपरीत, यह समझ की मानवीय गरिमा को घटाता है। यह तुलनात्मक मूल्यांकन मस्तिष्क को पंगु बनाता है - जिसका अर्थ यह नहीं है कि अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति का अवलोकन न करे और इसका एक रिकॉर्ड न रखे। अभिभावक स्वाभाविक रूप से उनके बच्चों की प्रगति जानने को उत्सुक रहते हैं, रिपोर्ट चाहेंगे; किन्तु, दुर्भाग्य से, जैसे कि वे यह नहीं समझते कि शिक्षक क्या करना चाहता है, जिस रिपोर्ट की अभिभावक इच्छा रखते हैं- वे उस रिपोर्ट का प्रयोग स्नेहिल या धमकी भरे तरीकें से जबरदस्ती करने के साधन के रूप में उस परिणाम को पैदा करने के लिए करते हैं, और इसलिए उस कार्य को पूर्ववत रखें जिसे अध्यापक करना चाहता है। माता-पिता को शिक्षा के उस प्रकार को समझना चाहिए जिसे देने के हम आग्रही हैं। आम तौर पर वे बच्चों की किसी प्रकार की डिग्री प्राप्त होता देखकर सन्तुष्ट हो जाते हैं जो उन्हें अजीविका के लिए आश्वस्त करेगी। बहुत कम लोगों का सरोकार इससे परे होता हैं। बेशक वे अपने बच्चों को कथिततौर पर प्रसन्न देखने की चाहत रखते हैं, पर इस धुंधली इच्छा के परे बहुत कम लोग हैं जो उनके पूर्ण विकास के लिए सरोकार रखते हैं। क्योंकि अधिकतर यह कामना करते हैं कि उनके बच्चों का सफल कैरियर हो, वे या तो स्नेहिल घुड़की देते हैं या उन्हें पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने के लिए डराते हैं, और इस तरह पुस्तक महत्त्वपूर्ण हो जाती है; जिसके साथ मात्र स्मृति का ही विकास होता है, जो इसके पीछे छिपे असली विचार को गुणवत्ता के बिना दोहराती है।

जिस समस्या का सामना हमारे शिक्षक को करना पड़ता है वह अभिभावक की एक व्यापक और गहन शिक्षा के प्रति बड़ी उदासीनता है, अभिभावकों के रूप में वे केवल सतही ज्ञान के विकास के लिए चिन्तित हैं जो उनके बच्चों को एक दुषित या भ्रष्ट-समाज में एक सम्मानजनक स्थान दिलाएगा।

अतः शिक्षकों को बच्चों को न केवल उचित प्रकार से शिक्षित करना है, बल्कि यह भी देखना है कि अभिभावक उस सब में उलट-फेर न कर दें जो की विद्यालय में किया गया है। वास्तव में स्कूल और घर को सच्ची शिक्षा को केन्द्र होना चाहिए, ना कि एक दूसरे के विपरित, अभिभावक कुछ और

चाह रहे हों और शिक्षक पूर्ण रूप से कुछ अलग कर रहे हों। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि अभिभावकों को इस बात की पूरी जानकारी हो कि शिक्षक क्या कर रहे हैं और वह अपने बच्चों के सम्पूर्ण विकास में महत्त्वपूर्ण रूप से रुचि रखें। यह उनकी भी बराबरी की जिम्मेदारी है कि वह यह देखें कि इस प्रकार की शिक्षा संचालित की जाए और यह केवल अध्यापकों पर ही ना छोड़ दिया जाए, जिनका बोझ पहले से ही काफी भारी है। यह सम्पूर्ण विकास तभी पूर्ण रूप से किया जा सकता है जब शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक में सही सम्बन्ध हों। क्योंकि किसी भी परिस्थिति में शिक्षक अभिभावकों की काल्पनिक और दुराग्रहपूर्ण मांगों को पूरा नहीं कर सकते, यह आवश्यक हो जाता है कि अभिभावक यह समझें कि शिक्षक क्या कर रहा है और उनके बच्चों में द्वंद्व और भ्रम उलझन पैदा ना करें।

निःसंदेह, बच्चों में बहुत प्रारम्भ से ही प्राकृतिक स्वाभाविक जिज्ञासा और सीखने की तीव्र इच्छा होती है, और इसे बुद्धिमत्ता से प्रेरित किया जाना चाहिए, जिससे कि जैसे जैसे वे बड़े होते हैं यह तीव्र इच्छा बिना किसी विकृति के जीवनदायनिक व महत्त्वपूर्ण बनी रहे और वे विभिन्न विषयों के अध्ययन की तरफ बढ़ते रहें। यदि पढ़ने के प्रति इस उत्सुकता को हर वक्त प्रेरित किया जाए तो शिक्षक या बच्चें के लिए गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान जैसे विषय चुनौती नहीं रहेंगे। सीखना तब सुगम हो जाता है, जब माहौल विचारों से पूर्ण स्नेह व खुशनुमा देखभाल हो।

भावनात्मक संवेदनशीलता केवल तभी विकसित हो सकती है, जब विद्यार्थी को यह महसूस हो कि वह अध्यापकों के साथ अपने सम्बन्धों में सुरक्षित है। सम्बन्धों में सुरक्षित रहने की भावना और निर्भरता में व्यापक अन्तर है। अधिकांश शिक्षक जाने अनजाने, निर्भरता की इस भावना को विकसित करते हैं और इसलिए धीरे धीरे डर को बढ़ावा देते हैं, जो अभिभावक भी अपने स्नेहिल या आक्रामक तरीके से करते हैं, और यह निर्भरता निरंकुशतावादी(authoritarian) और दृढधर्मिता(dogmatic) के दावे के रूप में खुद यह बताती है कि बच्चे को क्या होना चाहिए और उसे क्या करना चाहिए। निर्भरता के साथ हमेशा डर की छाया रहती है और यह छाया बच्चें को बड़ों के फर्मानों और प्रतिबन्धों को मानने की पुष्टिकरने और स्वीकारने के लिए मजबूर करता है। निर्भरता के इस माहौल में भावनात्मकता संवेगात्मक संवेदनशीलता को रौंद दिया जाता है। और इसलिए कभी भी विकसित नहीं किया जा सकता है लेकिन जब बच्चा जानता है और यह महसूस करता है कि वह सुरक्षित है तो भावनात्मक संवेगात्मक पुष्पवन असुरक्षा के डर से विफल नहीं होता। यह सुरक्षा असुरक्षा के विपरीत नहीं है। सुरक्षा से हमारा अर्थ घर पर होने के अहसास से है, जो बालक को पहले प्रभाव से महसूस होता है। उस घर से नहीं जहाँ से बच्चा आता है, बल्कि उस घर से जहाँ बच्चा वह हो सकता है जो वो है, जहाँ उसे कुछ बनने या नहीं बनने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा, जहाँ वह एक पेड़ पर चढ़ सकता है और अगर वह गिर जाए तो उसे डाँटा नहीं जाएगा, जहाँ शिक्षक या घर की माता या घर के पिता गहन रूप से बच्चे के पूर्ण लोककल्याण के लिए गहरे सरोकार रखते हो।

महत्त्वपूर्ण यह है कि बच्चा, कुछ हफ्ते या कुछ महीने बाद नहीं, पहले ही प्रभाव से यह महसूस करे कि वह घर पर है, पूरी तरह से सुरक्षित है। यह पहला प्रभाव है, जो सर्वोच्च महत्त्व का

है। लेकिन शिक्षक अगर उसका विश्वास प्राप्त करने के विभिन्न तरीकों को उपयोग करने की कोशिश करता है और बच्चे को जैसी वह चाहे, स्वतन्त्रता प्रदान करता है, तो शिक्षक निर्भरता विकसित कर रहा है और बच्चे को सुरक्षित होने की भावना प्रदान नहीं करता, वह भावना कि वह अपने घर पर है जहाँ ऐसे लोग हैं, जो उसके पूर्ण लोककल्याण के लिए गहन रूप से सरोकार रखते हैं। इस नए सम्बन्ध का जो बच्चे के साथ पहले कभी नहीं था, सबसे पहला प्रभाव एक स्वाभाविक संवाद होगा जिसमें बच्चे बड़ों को किसी खतरे के रूप में नहीं देखेंगे, जिसका कि सम्मान किया जाना है। एक बालक जो सुरक्षित महसूस करता है, उसके सम्मान अभिव्यक्त करने के अपने तरीके होते हैं, जो सीखने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। यह सम्मान सभी प्रकार के प्राधिकार और भय से रहित है। इसमें सुरक्षा, आचरण और व्यवहार की भावना किसी बड़े के द्वारा थोपी नहीं जाती, बल्कि सीखने की प्रक्रिया बन जाती है। और क्योंकि बच्चा शिक्षक, बड़ों के साथ अपने सम्बन्धों में सुरक्षित है, वह स्वभाविक रूप से दूसरों का ध्यान रखने वाला व विचारशील बनेगा, और केवल सुरक्षा के इस वातावरण में ही भावनात्मक संवेदनशीलता का पुष्पवन किया जा सकता है। घर पर होने, सुरक्षित होने के इस वातावरण में वह वह करेगा, जो वह करना चाहता है, और जो वह करना चाहता है वह करने में, वह यह खोजना सीख लेगा कि क्या करना सही है, जो प्रतिरोध की क्रिया या अशिष्टता की कार्यवाई या दमित भावनाओं या तत्कालिक आग्रहों की प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं है।

संवेदनशील होना, सभी चीजों के बारे में उसी तरह से संवेदनशील होना है जैसे कि एक के बारे में, चाहे वह पौधे, जानवर, पेड़, आकाश, पानी या उड़ती हुई चिड़िया हो, लोगों के मूड के बारे में संवेदनशील होना और ठीक इसी तरह गुजरते हुए अजनबी के मूड के प्रति होना होता है। यह संवेदनशीलता अपरिकलित(uncalculated)और स्वार्थरहित प्रतिक्रिया की वह गुणवत्ता लाती है जो सच्ची नैतिकता और आचरण है। इसलिए उसका आचरण खुला होगा, न कि छुपा या गुप्त, और खुला होने के कारण अध्यापकों द्वारा सुझाव मात्र पर बिना किसी प्रतिरोध और टकराव के आसानी से स्वीकार कर लेगा।

जैसे कि हम मनुष्य के पूर्ण विकास और उसकी भावनात्मक प्रवृत्तियों के बारे में सरोकार रखते हैं, जोकि बौद्धिक तार्किकता से बहुत ज्यादा मजबूत है, हमें भावनात्मक क्षमता को विकसित करना चाहिए और न कि इसे दबाने में मदद करनी चाहिए। जब कोई भावनात्मक और बौद्धिक मुद्दों से निपटने में सक्षम हो, तब उसके नजदीक जाने में किसी डर की कोई भावना नहीं होगी।

चूंकि हमारा सरोकार मनुष्य के पूर्ण विकास से सम्बन्धित हैं, संवेदनशीलता को विकसित करना एक आवश्यकता बन जाता है, और एकांत एक साधन के रूप में कार्य करता है। जैसे गणित को जानना आवश्यक है, वैसे ही यह जानना भी ज़रूरी है कि यह अकेला होना क्या होता है, ध्यान करना क्या होता है, यह मरना और नहीं मरना क्या है- एकान्त क्या है, ध्यान क्या है। और इसे केवल खोज कर ही निकला जा सकता है। और इसलिए ध्यान के, एकान्त के, मृत्यु के क्या निहितार्थ हैं इसको सीखना चाहिए। इन निहितार्थों को पढ़ाया नहीं जा सकता, लेकिन सीखा जाना चाहिए। कोई इंगित कर सकता है, पर जो इंगित करके सिखाया गया है वह ना तो एकान्त है और ना ही ध्यान।

लेकिन यह सीखने के लिए कि, एकान्त क्या है और ध्यान क्या है, जिस तरह आप गणित सीखते है, जाँच-पड़ताल होनी चाहिए और यह जाँच-पड़ताल आवश्यक रूप से सीखने का तरीका है। एक मस्तिष्क जो जाँच-पड़ताल करने में सक्षम है, वह सीखने में भी सक्षम है। लेकिन जब जाँच-पड़ताल उच्चतर ज्ञान के द्वारा अथवा उच्चतर सत्ता के द्वारा और अनुभव द्वारा दमन कर दिया जाता है, तब सीखना किसी मॉडल का प्रतिरूपण(imitation) बन जाता है, और यह प्रतिरूपण मात्र एक मानवीय इकाई को पैदा करता है जो सीखने के अनुभव के बिना सिर्फ दोहरान करते हैं ।

शिक्षण केवल सूचना प्रदान कर देना नहीं है बल्कि एक जिज्ञासु मन की साधना है (जाँच-पड़ताल करने वाले, पूछताछ करने वाले मस्तिष्क का विकास करना है) जो इस सवाल के भीतर गहरे तक जाए कि धर्म क्या है और स्थापित धर्मों, चर्चों और कर्मकाण्डों को केवल स्वीकार मात्र ना करे। वह ईश्वर की, सत्य की या जो भी हम इसे जो भी नाम देना चाहें खोज करे कि यह है सच्चा धर्म, और न कि केवल विश्वास और हठधर्मिता(dogma) को स्वीकार कर ले। जिस तरह एक विद्यार्थी रोज अपने दाँत साफ करता है, रोज नहाता है, दिन के हर क्षण में सीखता है, उसी प्रकार शांति से दूसरों के साथ या स्वयं के साथ बैठने की क्रिया भी होनी चाहिए। पर जब वह एकान्त में शान्त बैठता है, तो यह उसकी दैनिक गतिविधियों से या उसकी नीरसता से भागने का साधन ना हो, और यह कुछ असामान्य नहीं हो बल्कि उसके जीवन का हिस्सा हो। इस एकान्त में, जिसे निर्देश द्वारा नहीं लाया जाता है, या परम्परा की बाह्य शक्ति द्वारा प्रवृत्त नहीं किया जाता है या उन लोगों द्वारा प्रेरित नहीं होता है जो शान्त बैठना चाहते है लेकिन जो अकेले रहने में सक्षम नहीं हैं-इस एकान्त में, वह उसके द्वारा जीवन से सम्बन्धित ज्ञान के रूप में स्वयं द्वारा एकत्रित सभी के निहितार्थ को देखना भी सीख रहा है जो केवल अधिग्रहित, स्वमापित और आत्म-केन्द्रित नहीं है। एकान्त मस्तिष्क को दर्पण की तरह स्पष्टता से देखने में सहायता करता है और यह महत्त्वाकांक्ष के व्यर्थ उद्यम और इसके साथ ही पैदा होने वाली भय और निराशा की सभी जटिलताओं से स्वयं को मुक्त करता है जो कि आत्म-केन्द्रित गतिविधि की अभिव्यक्ति है। यह एकान्त मन को स्थायित्व प्रदान करता है, वह स्थिरता जिसे समय के सन्दर्भ में मापा नहीं जा सकता। यह है मन की स्पष्टता जो कि चरित्र है। चरित्र का अभाव आत्म-विरोधाभास की अवस्था है।

संवेदनशील होना प्रेम है। प्रेम शब्द, प्रेम नहीं है। और प्रेम को ईश्वर के प्रेम और व्यक्ति के प्रेम के रूप में विभाजित करने के लिए नहीं है। प्रेम का एक अथवा अनेकों के प्रेम में मापन नहीं किया जाना चाहिए। प्रेम उस फूल की तरह प्रचुरता से देने की क्षमता है जिसे हर कोई अपने होठों तक ले जाना चाहता है लेकिन हम हमारे सम्बन्धों में हमेशा इसे मापते रहते हैं और इसलिए नष्ट कर देते हैं। प्रेम समाज सुधारक या सामाजिक कार्यकर्त्ता की उपभोग की वस्तु(commodity) नहीं है; यह कोई राजनीतिक उपकरण नहीं है, जिसके साथ कोई कार्यवाई करनी है। जब राजनेता और सुधारक इसका प्रयोग करते हैं, वे एक शब्द का उपयोग कर रहे होते हैं और इसलिए इसकी वास्तविकता तक नहीं पहुँच पाते, क्योंकि प्रेम को अन्त के एक साधन के रूप में नियोजित नहीं किया जा सकता है, चाहे वह तत्कालिक हो या दीर्घकालिक। यह धरती का प्रेम है, इसमें कोई विशेष क्षेत्र नहीं है। यथार्थ के प्रेम को किसी धर्म द्वारा बांधा नहीं जाता है, और जब संगठित धर्म इसका उपयोग करते हैं तो

इसका अन्त हो जाता है। समाज और संगठित धर्मों तथा निरंकुशतावादी सरकारें जो अपनी विभिन्न गतिविधियों में तत्पर हैं, अनजाने में उस प्रेम को नष्ट कर देती हैं, जो कारवाई में एक जूनून बन जाता है।

और जैसा कि हमारा सरोकार उचित शिक्षा द्वारा एक मनुष्य का पूर्ण विकास के साथ है, शुरुआत से ही प्रेम की गुणवत्ता को पोषित और निर्वहन किया जाना चाहिए। प्रेम भावुकता नहीं है, ना ही भक्ति है। यह मृत्यु की तरह शक्तिशाली है; इसे ज्ञान के द्वारा नहीं खरीदा जा सकता। और केवल अपने लिए ज्ञान की प्राप्ति करने की कोशिश करने वाला मन, एक ऐसा मन है जो निष्ठुरता का व्यवहार करता है और केवल दक्षता के लिए काम करता है।

इसलिए, शिक्षक को शुरुआत से ही प्रेम के इस गुण के साथ सरोकार होना चाहिए, जो कि विनम्रता, सौम्यता, विचारशीलता, धैर्य और शिष्टाचार है। शिष्टाचार की विनम्रता अच्छी और उचित शिक्षा वाले व्यक्ति में अन्तर्निहित होती है; यह अकेले ही सभी चीजों का ध्यान समाहित कर लेता है चाहे वह पौधों, जन्तुओं, व्यवहार करने के तरीके हों, और बात करने का ढंग हो।

इसका अर्थ है, कि सुकुमार अवस्था (tender age) से ही सभी चीजों के प्रति संवेदनशीलता को विकासित करने, सभी चीजों की चाहे वह एक पेड़ हो या एक मनुष्य या फर्नीचर हो या आधुनिकतम मोटर हो, की देखभाल करने के लिए नहीं है। प्रेम की गुणवत्ता पर यह जोर दिया जाना संवेदनशीलता लेकर आता है और एक ऐसा मन जो अपनी महत्वाकांक्षाओं, लोभ, संग्रहशीलता(acquisitiveness) के साथ आत्मलीन(self-absorbed) नहीं है। क्या यह न केवल स्वयं के परिष्करण का संग्रह करता है, जो न केवल स्वयं को अच्छे स्वाद और सम्मान में अभिव्यक्त करता है, बल्कि जो मन के शुद्धिकरण को भी लाता है, और जो कि एक भिन्न प्रकार से स्वयं अहंकार को मजबूत करने की प्रवृत्त रखता है? पहनावे में, बातचीत में, व्यवहार में, परिशोधन स्वयं द्वारा थोपा गया सामंजस्य या बाहरी मांग नहीं है, बल्कि यह प्रेम के इस गुण के साथ आता है। इस गुण की समझ के साथ, सेक्स और सभी तरह की गुथियों और मानवीय सम्बन्धों की बारीकियों के नजदीक बुद्धिमानी के साथ पहुंचा जा सकता है और न कि उत्तेजना और शंका या भय के साथ।

वह शिक्षक जिसके लिए मनुष्य का पूर्ण विकास प्राथमिक महत्त्व का है उसे बहुत शुरुआत से ही यौन आग्रहों के निहितार्थों के बारे में, बिना बच्चों की जिज्ञासा विकसित किए किन्तु उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए सरोकार होना चाहिए। क्योंकि यौन आग्रह किसी के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, किशोरवय में केवल जैविकीय ज्ञान या सूचना प्रदान कर देना एक प्रयोगात्मक काम-वासना बन सकती है, अगर प्रेम के गुण को अनुभूत न किया जाये। प्रेम मस्तिष्क से बुराई को साफ करता है। बिना इन सबके, लड़के और लड़की के बीच कंटीले तारों और फ़रमानों से बंटवारा करके उनकी जिज्ञासा को मजबूत करेगा और वह लालसा केवल सन्तुष्टि में पतित होने के लिए बाध्य है। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि लड़के और लड़की को उचित प्रकार से एक साथ शिक्षित किया जाए।

प्रेम के इस गुण को चीजों को स्वयं अपने हाथों से करके में व्यक्त करना चाहिए यथा - उद्यानिकी, सुथारी/बढ़ईगिरी (carpentry), चित्रकारी(painting), हस्तशिल्प(handicrafts) - और अपने आँखों और कानों के जरिए से- पेड़ों को, बहते पानी को, व धरती की समृद्धि को देखना और उस गरीबी को देखना, जिसे मनुष्य ने अपने स्वयं के बीच निर्मित किया है, और पक्षियों, संगीत और गीत को सुनना।

हमारा केवल मन और भावनात्मक संवेदनशीलता से ही सरोकार नहीं हैं बल्कि शरीर के स्वस्थ देखभाल के लिए भी सरोकार है और इसलिए हमें इस पर पर्याप्त चिन्तन करना चाहिए। इसलिए अगर शरीर स्वस्थ, जीवनप्रद नहीं है, तो जाहिर है कि यह चिन्तन को विकृत करेगा और असंवेदनशीलता को निर्मित करेगा। यह एक स्पष्ट तथ्य है जिसमें हमें विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। यह आवश्यक है कि उचित खाना खाते हुए और पर्याप्त नींद लेते हुए शरीर का स्वस्थ्य उत्तम हो। अगर इन्द्रियां सजग और संवेदनशील नहीं है, तो शरीर मनुष्य के सम्पूर्ण विकास में हस्तक्षेप करेगा। माँसपेशियों की सुघड़ता और नियंत्रण के लिए, नृत्य, योग और खेलकूद जैसे अभ्यास के विभिन्न रूप होने चाहिए। एक शरीर जो स्वच्छ नहीं है, जो स्वयं को अच्छी भाव-भंगिमा[posture (मुद्रा)] नहीं रखता, जो मैला है, वह मस्तिष्क की संवेदनशीलता या भावनाओं के सहायक नहीं है। शरीर मस्तिष्क का यंत्र नहीं है। लेकिन शरीर, भावनाएँ और मन-मस्तिष्क पूर्ण मनुष्य बनाते हैं और बिना इन सभी के एक साथ समरसतापूर्ण रहे संघर्ष अवश्यंभावी है। संघर्ष से असंवेदनशीलता निर्मित होती है। मन-मस्तिष्क शरीर का नियंत्रण या उस पर हावी हो सकता है और इंद्रियों का दमन कर सकता है और शरीर को असंवेदनशील बना सकता है। इस तरह का असंवेदनशील शरीर मन-मस्तिष्क की पूरी उड़ान में बाधक बन जाता है। शरीर का आत्मदमन निश्चित रूप से चेतना की गहरी परतों की खोज करने के लिए सहायक नहीं है- जो कि केवल तभी संभव है जब मन-मस्तिष्क, भावनाएँ और शरीर एक-दूसरे के साथ विरोधाभास में न हो बल्कि किसी अवधारणा, विश्वास या आदर्श से संचालित हुए बिना सरलता से एक साथ रहते हैं ।

मन-मस्तिष्क को विकसित करने में, जोर संकेन्द्रण या एकाग्रता(Concentration)पर नहीं बल्कि ध्यान(attention) पर दिया जाना चाहिए। एकाग्रता मस्तिष्क को एक बिन्दु तक संकीर्ण करने के लिए बाध्य करने की प्रक्रिया है, जबकि ध्यान सीमा रहित है। एकाग्रता हमेशा सीमाओं या परिसीमन के साथ सीमित ऊर्जा है, लेकिन जब हम मस्तिष्क की सम्पूर्णता की समझ से सम्बन्धित हों, तो केवल एकाग्रता बाधा बन जाती है, जबकि ध्यान की कोई सीमा नहीं है ज्ञान की किसी भी सीमाओं के बिना ध्यान असीम है। ज्ञान एकाग्रता के जरिए से प्राप्त होता है और ज्ञान का विस्तार भी एकाग्रता की सीमाओं के भीतर ही है। ध्यान, का जिस अर्थ में हम इस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, वह ज्ञान का प्रयोग कर सकता है और करता है जो आवश्यक रूप से एकाग्रता का परिणाम है। अंश कभी भी सम्पूर्ण नहीं होते हैं और कोई अंशों को एक साथ जोड़ने पर सम्पूर्ण नहीं बनता। और ज्ञान जो एकाग्रता की योगात्मक प्रक्रिया है, वह अथाह या असीमित समझ विकसित नहीं कर सकता। सम्पूर्ण कभी भीमन-मस्तिष्क के कोष्ठकों(brackets) के साथ नहीं होता जोकि एकाग्र (concentrated) है।

जैसा कि हमारा सरोकार मनुष्य और मन-मस्तिष्क के पूर्ण विकास से हैं, ध्यान प्राथमिक महत्त्व का बन जाता है। यह ध्यान एकाग्रता के प्रयास से नहीं आता, बल्कि यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें मन-मस्तिष्क हमेशा सीखाता है बिना किसी एक केन्द्र के चारों ओर जहां ज्ञान अनुभव के रूप में एकत्रित होता है। ज्ञान का उपयोग मन-मस्तिष्क के द्वारा आत्म-विस्तार के रूप में किया जाता है, जो स्वयं पर केन्द्रित है, और इसलिए ऐसी गतिविधि आत्म-विरोधाभासी और इसलिए असामाजिक हो जाती है।

और हम क्योंकि एक व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास से सम्बन्धित हैं और इसलिए उसके अन्यों के साथ रिश्ते - जो कि समाज है - ध्यान पर जोर दिया जाना चाहिए ना कि केवल एकाग्रता पर। सीखना केवल ध्यान की इस अवस्था में सम्भव है, जहाँ कोई बाहरी या आन्तरिक बाध्यता ना हो। सही सोच तभी आ सकती है जब मन-मस्तिष्क परम्परा और स्मृति से बंधा हुआ ना हो। यह ध्यान है, जो मस्तिष्क पर मौन को आने की अनुमति देता है, जोकि उस सृजन की ओर खुलने वाला द्वार है। ध्यान सर्वोच्च महत्त्व का है।

तब ज्ञान मन-मस्तिष्क को विकसित करने के साधन के रूप में आवश्यक है, ना कि इसके स्वयं का अन्त के रूप में। हम एक गणितज्ञ या एक वैज्ञानिक अथवा एक संगीतज्ञ के रूप में केवल एक क्षमता के विकास के लिए ही सरोकार नहीं रखते हैं, बल्कि विद्यार्थी के सम्पूर्ण विकास के लिए जिसमें यह सभी चीजें सम्मिलित हो।

इस ध्यान को कैसे लाया जाए? इसे प्रोत्साहन, तुलना, पुरस्कार अथवा दण्ड के किसी भी स्वरूप के द्वारा विकसित नहीं किया जा सकता, यह सभी दबाव के रूप हैं; डर को खत्म करना ध्यान की शुरूआत है। डर तब तक ही रहना चाहिए जब तक कुछ बनने या कुछ बनने की उत्कंठा है, जिसे अपनी सभी कुंठाओं और यातनापूर्ण विरोधाभासों के साथ सफलता के रूप में अनुवादित किया जाता है। ध्यान को उस तरह नहीं सिखाया जा सकता, जिस तरह आप एकाग्रता सिखाते हैं, जिस तरह आप सम्भवतः यह नहीं सिखा सकते कि डर से कैसे मुक्त हुआ जा सकता है, लेकिन हम उन कारणों को खोज सकते हैं, जो डर पैदा करते हैं और इन सभी कारणों को समझने में ही डर का खात्मा है। इसलिए, ध्यान तब अस्तित्व में आता है जब विद्यार्थी के आस-पास स्वस्थ्य शारीरिक माहौल हो, सुरक्षित होने का और घर पर होने का अहसास हो- जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं- प्रेम के साथ आने वाली निस्वार्थ क्रिया हो। प्रेम तुलना नहीं करता और इसलिए यातना के प्रकरणों का 'बनना' (becoming) भी खत्म हो जाती है।

सामान्य असन्तोष जिसका अनुभव हम सभी करते हैं, चाहे युवा हों या प्रौढ़, जल्द ही सन्तुष्टि का तरीका खोज लेता है, और इस प्रकार हमारा मस्तिष्क सुसुप्त हो जाता है। यह समय-समय पर पीड़ा के माध्यम से जागृत होता है और यह पीड़ा फिर से कुछ समाधान खोजती है, जो सन्तोषप्रद होगी। इसलिए सन्तोष और असन्तोष के इस चक्र में मस्तिष्क फँस जाता है, और दर्द से जागृत होता है, जो इस असन्तोष का हिस्सा है। असन्तोष जाँच का तरीका है, और अगर मस्तिष्क को परम्पराओं

के प्रति, आदर्शो के प्रति सीमित कर दिया जाए तो कोई जाँच नहीं हो सकती। यह वह जाँच है, जो ध्यान की ज्योति है।

असन्तोष से हमारा अर्थ मन-मस्तिष्क की वह अवस्था है जो यह समझे कि क्या यथार्थ है, और इससे आगे जाने की खोज करने के लिए जाँच करता है। यह संचलन(Movement) क्या है, असन्तोष की सीमाओं से परे जाने का है, और अगर आप असन्तोष का दमघोंटना या उस पर विजय पाने के तरीके या साधन खोजते हैं, तो आप आत्म-केन्द्रित गतिविधि और उस समाज की सीमाओं को स्वीकार करेंगे जिसमें आप स्वयं को पाते हैं। असंतोष हम में से बहुतायत और अधिकांश लोगों में है, और इस पर जीत हासिल करने के लिए हम विभिन्न तरीकों से इसे नष्ट करते हैं। किन्तु असन्तोष वह ज्वाला है, जो सन्तोष के कचरे को जला देता है। असन्तोष थोड़े और के लिए, बड़े घर के लिए, इत्यादि ईर्ष्या के क्षेत्र के भीतर हैं, और यह ईर्ष्या है जो इस असन्तोष को बनाए रखती है। लेकिन हम और 'अधिक' के लालच या ईर्ष्या की बात नहीं कर रहे हैं; हम असन्तोष की बात कर रहे हैं जो 'अधिक' की किसी भी इच्छा या अनुभव से प्रज्ज्वलित नहीं होती है। यह असन्तोष एक अप्रदूषित अवस्था है, जिसका अस्तित्व होना चाहिए और जिसका अस्तित्व है, अगर गलत शिक्षा या किसी एक आदर्श के माध्यम से इसे घटिया स्तर पर ले जाने की इज़ाजत न हो। जब हम इस असन्तोष की प्रकृति को समझ लेंगे, तो हम यह देखेंगे कि ध्यान इस जलती हुई लौ का हिस्सा है जो तुच्छता को निगल जाता है और मन-मस्तिष्क को आत्म-संलग्नता(self-enclosing) के लक्ष्यों और सन्तुष्टि की सीमाओं के बिना छोड़ देता है। इसलिए ध्यान केवल तब अस्तित्व में आता है, जब जांच आत्म-उन्नति (self-advancement) या सन्तुष्टि पर आधारित ना हो।

इस ध्यान को शुरू से ही विकसित किया जाना चाहिए। आप पाएंगे कि जहां प्रेम होता है तो वह विनम्रता, शिष्टाचार, धैर्य और सौम्यता के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करता है, तो आप पहले से ही उन सीमाओं को दूर कर रहे हैं जो असंवेदनशीलता का निर्माण करती है, और इसलिए बहुत ही किशोर वय से आप इसे ध्यान की स्थिति में लाने में मदद कर रहे हैं। इस ध्यान को सीखना नहीं होता है, लेकिन आप इसे विद्यार्थी में लाने में सहायता कर सकते हैं जब उसके आसपास कोई मजबूरी की भावना नहीं हो और इसलिए कोई आत्म-विरोधाभासी अस्तित्व नहीं है। फिर उनका ध्यान किसी भी क्षण किसी दिए हुए विषय पर केन्द्रित किया जा सकता है, किन्तु यह उपलब्धि या अधिग्रहण के अनिवार्य आग्रह द्वारा लाई गई एकाग्रता नहीं है।

एक पीढ़ी जो इतनी शिक्षित है, वे अपने माता पिता और जिस समाज में वे पैदा हुए हैं उसके मनोवैज्ञानिक विरासत से मुक्त होगी, और क्योंकि वे इतने शिक्षित हैं कि; वे सम्पत्ति की विरासत पर निर्भर नही करेंगे। विरासत का यह कारक स्वतंत्रता को नष्ट कर देता है और बुद्धिमत्ता को सीमित कर देता है, क्योंकि यह आत्म आश्वासन प्रदान करते हुए सुरक्षा की झूठी भावना को जन्म देता है, जिसका कोई आधार नहीं है। सुरक्षा की यह झूठी भावना मन का अन्धकार है, जिसमें कुछ भी पनप नहीं सकता। एक ऐसी पीढ़ी जिसे पूरी तरह से अलग तरीके से शिक्षित किया गया है, जिसके बारे में

हम बात कर रहे हैं, एक नया समाज बनाएगा। क्योंकि यह बुद्धिमत्ता से उत्पन्न हुई क्षमता होगी, वह बुद्धिमता जो डर से घिरी हुई नहीं है।

हम चूँकि विद्यार्थी के पूर्ण विकास से सरोकार रखतेहैं न की किसी एक विशेष पहलू के विकास में, ध्यान जो कि सर्व–समवेशी(all-inclusive) है महत्त्वपूर्ण बन जाता है। यह पूर्ण विकास अवधारणात्मक नहीं है- अर्थात्, मानव मन-मश्तिष्क की समग्रता का कोई खाका(ब्लू प्रिंट) नहीं है। जितना अधिक मन-मस्तिष्क जितना ही अधिक स्वयं का उपयोग करता है, उसकी क्षमता उतनी ही अधिक होने की सम्भावना होती है। मन-मस्तिष्क की क्षमता अनन्त है।

चूंकि शिक्षा किसी एक का काम नहीं है, बल्कि एक साथ कई लोगों का काम है, माता-पिता के साथ यह शिक्षकों का भी काम है अतः एक साथ काम करने की कला को जरूर सीखना होगा। यह एक साथ काम करना तभी आता है जब हममें से हर एक यह महसूस करे कि सत्य क्या है। यह सत्य ही है जो हम सबको एक साथ लाता है न कि मत या विश्वास या सिद्धान्त। अवधारणात्मक और तथ्यात्मक के बीच में बड़ा व्यापक अन्तर है। अवधारणात्मक हमें अस्थायी रूप से मौद्रिक या अन्य कारणों से एक साथ ला सकता है, लेकिन यह अलग-थलग हो जाएगा जब यह केवल विश्वास या दोषसिद्धि की बात हो। अगर सत्य दिख रहा है, तो विशेष विवरण पर असहमति हो सकती है, लेकिन अलग होने का कोई आग्रह नहीं होगा। यह मूर्खता ही है, जो किसी विशेष बात पर अलग हो जाएं, और कोई विशेष बात कभी भी एक मुद्दा नहीं बन सकती जिस पर असहमति है। हम एक अवधारणा, एक आदर्श पर काम करने के लिए एक साथ आ सकते हैं; लेकिन यह तथ्यात्मक नहीं है, और इस पर दृढ़ विश्वास, अनुनय, प्रचार और अन्य की जरूरत पड़ती है; और हममें से अधिकांश प्राधिकार की इन स्थापित रेखाओं के साथ मिलकर काम करने के आदी हैं ।

एक अवधारणा के लिए, एक आदर्श के लिए, साथ मिलकर कार्य करना, और सत्य को देखकर जो कार्यवाई होती है और उस कार्यवाई में सत्य की आवश्यकताएं, दो पूर्ण रूप से अलग-अलग गतिविधियां हैं। प्राधिकार के उद्दीपन के तहत कार्य करना सहयोग नहीं है, चाहे यह प्राधिकार किसी आदर्श की हो या उस आदर्श का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति के प्राधिकार का। आपके पास एक केन्द्रीय प्राधिकार है जो जानती है या जिसके पास कुछ निश्चित विचारों के साथ एक मजबूत व्यक्तित्व है जो दूसरे पर हावी है और उन्हें आसानी से या अन्य तरीकों से जिन्हें वह आदर्श कहता है, के साथ सहयोग करने के लिए मजबूर कर देता है। यह निश्चित रूप से एक साथ काम करना नहीं है। लेकिन जब हम में से हर एक कुछ निश्चित मुद्दों की सत्यता को समझेगा तो सत्य की यह समझ हमें उन पर कार्यवाई करने के लिए एक साथ ले आएगी। यह सहयोग है। और वह जिसने इस सहयोग को सीख लिया है क्योंकि वह सत्य को सत्य की तरह देखता है और असत्य को असत्य की तरह, और असत्य में सत्य को देखता है, वह सहयोग नही करना भी सीख लेगा- जो कि सहयोग करना सीखने के समान ही महत्त्वपूर्ण है।

अगर हम में से हर एक इस आवश्यकता को देख सके कि शिक्षा में एक मौलिक क्रान्ति की आवश्यक है और जो हमने कहा है उसकी सत्यता को समझ लें, तो हम सहमति या असहमति या

अनुनय के किसी भी रूप के बिना एक साथ मिलकर काम करेंगे। सहमति या असहमति तभी होती है जब कोई एक ऐसा कदम उठाता है जहाँ से वह हिलने–डुलने के लिए तैयार नहीं है, जब वह किसी एक विचार के बारे में आश्वस्त हो जाता है या एक मत या राय में उलझ जाता है। वह विरोध लेकर आता है, , और जब ऐसी स्थिति उठ खड़ी होती है, तो किसी न किसी को अलग प्रकार से सोचने के लिए आश्वस्त या प्रभावित अथवा प्रेरित करना होता है। इस तरह की स्थिति कभी उत्पन्न नहीं होती है, जब हम में से प्रत्येक इस सत्य को समझ लेता है। तब यह केवल शाब्दिक धारणा या एक बौद्धिक, तार्किक प्रयोग नहीं होगा बल्कि सत्य की समझ होगा। अगर हम सत्य को नहीं देखते हैं, तो अपनी सभी विकृति और निरर्थक प्रयासों के साथ विवाद, सहमति या असहमति है। यह जरूरी है कि हम एक साथ मिलकर काम करें क्योंकि हम एक साथ मिलकर एक घर बना रहे हैं। अगर हम में से एक घर को बनाएगा, और दूसरा तोड़ेगा तो घर नहीं बनेगा। इसलिए हमें, हम में से प्रत्येक को बहुत स्पष्ट होना चाहिए कि हम वास्तव में एक नई पीढ़ी को लाने की आवश्यकता को समझते हैं, जो जीवन के मुद्दों से एक सम्पूर्ण रूप में निपटने में सक्षम है और न कि सम्पूर्ण रूप से अलग अलग हिस्सों के रूप में असम्बन्धित है।

इस प्रकार के सहयोगात्मक तरीके से मिलकर काम करने के लिए हमें अकसर एक साथ मिलना होगा और इसके लिए सावधान रहना होगा कि हम किसी गौण में ना डूब जाए। हममें से जो गम्भीरता से इस समझ के लिए समर्पित है, उनकी जिम्मेदारी न केवल उस सब को कारवाई को अंजाम दें जिसे हम समझ चुके हैं, बल्कि यह देखने की भी है कि दूसरे भी इस समझ को प्राप्त करें। शिक्षण सर्वोच्च वृत्ति या पेशा है, अगर इसे वृत्ति या पेशा कहा जा सकता है तो। शिक्षण की कला को किसी विशेष बौद्धिक क्षमता की नही, बल्कि अनन्त धैर्य एवं प्रेम की आवश्यकता है। शिक्षा का अर्थ, क्या इन सभी चीजों धन से, सम्पत्ति से, लोगों से, प्रकृति से – अस्तित्व के विशाल क्षेत्र में के साथ सम्बन्धों की समझ नहीं है।

सुन्दरता केवल समानुपात, रूप, स्वाद और व्यवहार नहीं है। सुन्दरता मन-मस्तिष्क की वह अवस्था है जिसने सादगी के जुनून में स्वयं के केन्द्र का परित्याग कर दिया है। सादगी केवल तभी हो सकती है जब वह आत्मसंयम हो जो परिकलित अस्वीकृति और अनुशासित स्वप्रयासों की प्रतिक्रिया ना हो बल्कि वह आत्म-परित्याग हो जो केवल प्रेम से आ सकता है। सादगी का कोई अन्त नहीं है। इन सब के बिना हम एक ऐसी सभ्यता का निर्माण करेंगे जहाँ सरल आत्म-परित्याग की आन्तरिक जीवन शक्ति और स्थिरता के बिना, रूप की सुन्दरता की मांग की जाती है। यदि आत्म-निष्क्रियता का, आदर्शों में, विश्वासों में विसर्जन होता है तो कोई परित्याग नहीं है। यह बड़े क्षेत्र प्रतीत होते है, लेकिन वास्तव में, स्व अभी भी विभिन्न स्तरों की आड़ में काम कर रहा है। अबोध मन अकेले ही असीम अज्ञात की जाँच कर सकता है। लेकिन लंगोठी या साधु के चोले की परिकलित सादगी आत्म-परित्याग के उस लगन के करीब नहीं आ सकती है। इस लगन से शिष्टता, सौम्यता, विनम्रता और धैर्य आता है - जो प्रेम की अभिव्यक्ति है।

हम सुन्दरता को उसी के माध्यम से जानते हैं जिसे बनाई गईहै या एक साथ रखी जाती है - जैसे मानव रूप की या एक मन्दिर की सुन्दरता। हम यह कह सकते हैं कि वह वृक्ष, वह घर, वह नदी जो व्यापक रूप से घुमावदार है, सुन्दर है। और तुलना के कारण हम यह जानते हैं कि क्या कुरूप है- या कम से कम हम सोचते हैं कि हम जानते हैं। क्या सुन्दरता तुलनात्मक है? क्या सुन्दरता वह है जिसे प्रकट किया गया है? हम कहते हैं कि एक तस्वीर, एक कविता, एक चेहरा सुन्दर है क्योंकि हमें जो सिखाया गया है, या जिससे हम परिचित हैं, या जिसके बारे में हमनें कोई राय बनाई है, उससे हम पहले से जानते हैं या महसूस करते हैं। और क्या सुन्दरता तुलना के साथ खत्म नहीं हो जाती? क्या सुन्दरता केवल ज्ञात का ज्ञान है, या इसका अस्तित्व ऐसा है जिसमें कुछ सृजित है अथवा नहीं?

हम हमेशा सुन्दरता का पीछा कर रहे हैं और कुरूपता से बच रहे हैं, और इस तरह एक से बचना और दूसरे को बढ़ावा देना अनिवार्य रूप से असंवेदनशीलता को जन्म देता है। अब तथाकथित सुन्दरता या तथाकथित बदसूरती या कुरूपता दोनों के प्रति संवेदनशीलता अवश्य ही सुन्दरता क्या है की समझ या अनुभूति के लिए आवश्यक है। भावना सुन्दर या बदसूरत नहीं होती, यह केवल एक अनुभूति है। केवल जब हम अपनी शैक्षिक और सामाजिक अनुकूलन (कंडीशनिंग) के जरिए इस तक पहुँचते हैं, तब हम कहते हैं कि यह एक अच्छी भावना है, और यह एक बुरी भावना और इसलिए हम भावना को विकृत या नष्ट कर देते हैं। लेकिन जिस भावना को अच्छे या बुरे का लेबल चस्पा नहीं होता, वह प्रबल रहती है। यह वह भावुक प्रबलता है जो उस समझ की तलाश में जरूरी है जो न तो प्रकटतः सौन्दर्य है और ना ही कुरूपता। हम जिस पर जोर दे रहे है, वह अनवरत भावनाओं का व्यापक महत्त्व है वह भावना या लगाव जो केवल आत्मसन्तुष्टि की वासना नहीं है। यह वह है जो सुन्दरता को सृजित करता है और चूंकि यह तुलनीय नहीं है, इसलिए इसका कोई विलोम भी नहीं है।

चूंकि हम मनुष्य के पूर्ण विकास से सम्बन्धित हैं, हमें न केवल सचेतन मन-मस्तिष्क बल्कि अवचेतन मन-मस्तिष्क का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। अवचेतन की समझ के बिना केवल सचेतन की शिक्षा, अपनी निराशाओं और दुःखों के साथ मनुष्य के जीवन में विरोधाभास लाती है। छिपा हुआ मन सतही मन से कहीं अधिक जीवनप्रद और प्रबल है। अधिकांश शिक्षक नौकरी प्राप्त करने के लिए और स्वयं को समाज में समायोजित करने के लिए जानकारी देते हुए, जिसे वे ज्ञान कहते हैं, सतही मन को शिक्षित करने से सरोकार रखते हैं। इसलिए छिपे हुए मन-मस्तिष्क को कभी छुआ नहीं जाता। शिक्षकों ने जो कुछ भी किया है, वह यह है कि उन्होंने पर्यावरण को समायोजित करने की क्षमता और तकनीकी ज्ञान की एक परत को थोप दिया है।

लेकिन चूँकि हम एक मनुष्य के पूर्ण विकास से संपृक्त हैं, हमें छिपे हुए मन-मस्तिष्क की अवस्था को भी समझना चाहिए। यह छिपा हुआ मस्तिष्क सतही मस्तिष्क से कहीं अधिक शक्तिशाली है, चाहे यह सतही मन-मस्तिष्क कितना ही शिक्षित हो और चाहे यह कितना ही समायोजन करने में सक्षम हो। छिपा हुआ मस्तिष्क बहुत रहस्यमय नहीं है। यह निश्चित रूप से नस्लीय स्मृतियों का भंडार गृह हो जैसे कि धर्म, अन्धविश्वास, प्रतीक, किसी विशेष नस्ल की परम्परा, और उसके साहित्य का प्रभाव, चाहे

वह पवित्र हो या अपवित्र; किसी एक विशेष समूह का व उसके स्वयं की अनूठी परम्पराओं, आकांक्षाओं और कुंठाओं, प्रतीकों, तौर-तरीकों, और भोजन के साथ सामूहिक प्रभाव; और उसके इरादों और कुंठाओं के साथ प्रकट और छिपी हुई इच्छाएँ, उसकी आशाएँ और भय, उसके छिपे हुए दुःख और सुख और विश्वास जो विभिन्न तरीकों से सुरक्षा के लिए आग्रह द्वारा स्वयं को अनुदित करने के लिए निरंतर बने रहे हैं। इस छिपे हुए मस्तिष्क में न केवल इस शेष अतीत की असाधारण क्षमता है, बल्कि भविष्य में, नजदीक व दूर को पहले से देख लेने की क्षमता भी है। जब इस सतही मन पर रोजमर्रा की घटनाओं का पूरी तरह से दखल नहीं होता तो यह स्वयं को, सपनों और सतही मन के प्रति विभिन्न अंतरंगताओं के द्वारा अभिव्यक्त करता है।

अदृश्य मस्तिष्क कुछ आलौकिक नहीं है और न ही इससे भयभीत होने के लिए है, न ही यह विशेषज्ञ से यह मांग करता है कि इस सतही को उजागर किया जाए। केवल छिपे हुए मन-मस्तिष्क की विशाल क्षमता के कारण, सतही मन-मस्तिष्क जैसे चाहे वैसे इससे क्रिया-व्यवहार(Deal) नहीं कर सकता। सतही मन-मस्तिष्क काफी हद तक स्वयं के छिपे मन-मस्तिष्क के साथ अपने सम्बन्धों में असक्षम है। हालाँकि, यह इस पर हावी होने की, इसे आकार देने या नियंत्रित करने की कोशिश कर सकता है, इसकी तात्कालीक सामाजिक मांगों एवं लक्ष्यों के कारण, यह केवल छिपे हुई सतह को खुरच सकता है, और इसलिए छिपे और खुले के बीच विभाजन और विरोधाभास है।

हम इस खाई को अनुशासन, विभिन्न अभ्यासों, प्रतिबन्धों आदि से पाटने की कोशिश करते हैं;, पर यह इस तरह से पाटी नहीं जा सकती। क्योंकि सचेतन मस्तिष्क केवल - सीमित वर्तमान के अर्थ में - तात्कालिक के साथ व्यस्त है; जबकि छिपे हुए में सदियों का भार होता है जिसे किसी तात्कालिक आवश्यकता से साफ-सफाई करके अलग नहीं किया जा सकता, छिपे हुए में गहन समय का गुण है। सतही मस्तिष्क और इसकी हाल ही की संस्कृति के साथ, इसके अपने गुजरते हुए तीव्र आग्रहों के अनुरूप क्रिया-व्यवहार(Deal) नहीं कर सकता।

अतः विरोधाभास को मिटाने के लिए सतही मन-मस्तिष्क को इस तथ्य को समझना चाहिए और मौन रहना चाहिए, जिसका मतलब यह नहीं है कि छिपे हुए के असंख्य आग्रहों को गुंजाइश दिया जाए। जब खुले व छिपे हुए के बीच कोई प्रतिरोध नहीं होता है, तब छिपा हुआ तत्काल का उल्लंघन नहीं करेगा क्योंकि छिपे हुए के पास समय का धैर्य है।

अपने सतही के साथ यह जो छिपा हुआ मन-मस्तिष्क है जिसे खोजा नहीं गया है, जिसे समझा नहीं गया है, जो वर्तमान के सम्पर्क में – वर्तमान चुनौतियों और मांगों में आता है। सतही मस्तिष्क चुनौती का पर्याप्त रूप से जवाब दे सकता है, लेकिन क्योंकि सतही और छिपे हुए मस्तिष्क के बीच विरोधाभास है, इसलिए सतही का कोई भी अनुभव केवल अपने स्वयं के और छिपे हुए के बीच संघर्ष को बढ़ाता है। यह वर्तमान और अतीत के बीच की खाई को चौड़ा करते हुए और अधिक अनुभव को लाता है। आन्तरिक, छिपे हुए को समझे बिना सतही मन-मस्तिष्क का अनुभव केवल गहरा और व्यापक संघर्ष उत्पन्न करता है। अनुभव मुक्त या समृद्ध नहीं करते है, जैसा कि हम आम तौर पर सोचते है कि वे करते हैं। जब तक अनुभव अनुभव करने वाले को मजबूत करते हैं , तब तक

संघर्ष होना चाहिए। अनुकूलित मन-मस्तिष्क केवल अनुकूलन को मजबूत करता है, और इसलिए संघर्ष और दुःख को बढ़ाता है। केवल उस मन-मस्तिष्क के लिए जो स्वयं के सभी तरीकों को समझ रहा हो, वह मुक्ति कारक का अनुभव कर सकता है।

जब छिपे हुए की कई परतों की शक्तियों एवं क्षमताओं की समझ होती है, तो विशेष को बुद्धिमानी और समझदारी से देखा जा सकता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए जो महत्वपूर्ण है वह सतही मस्तिष्क की शिक्षा नहीं है-जो आवश्यक है - बल्कि वह छिपे हुए की समझ है। यह समझ पूरे मस्तिष्क को संघर्ष से मुक्त करती है, और केवल तभी उसकी बुद्धिमत्ता है।

जैसा की हम एक मनुष्य के सम्पूर्ण विकास से सरोकार रखते हैं, हमें रोजमर्रा की गतिविधियों में रहने वाले सतही मन-मस्तिष्क को ही सम्पूर्ण क्षमता नहीं प्रदान कर देनी चाहिए, बल्कि छिपे हुए को भी समझना चाहिए क्योंकि छिपे हुए को समझने में एक पूरा जीवन होगा, जिसमें दुःख व सुख, के रूप में विरोधाभास खत्म हो जाएगा। छिपे हुए मन-मस्तिष्क के कार्यों के प्रति जागरुक होना और इससे परिचित होना आवश्यक है, पर इसी के समान, इसके साथ एकदम से व्यस्त नहीं हो जाना चाहिए और न ही इसे अनुचित या बहुत ज्यादा महत्त्व दिया जाना चाहिए। यह केवल तभी तक है कि मन-मस्तिष्क, छिपा हुआ और सतही, अपनी सीमाओं से परे जाकर उस परम-आनन्द को खोज सकता है, जो समय की सीमाओं में बंधा नहीं है।

सन्दर्भ

जे. कृष्णमूर्ति (2012-03-13) जे कृष्णमूर्ति के संकलित कार्यों से (1958-1960) वॉल्यूम – 11: क्राइसिस इन कॉन्सीअसनेस (किन्डल लोकेशन्स् 429-430) किन्डल एडिशन

Krishnamurti, J. (2012-03-13). The Collected Works of J. Krishnamurti: 1958-1960: Volume 11: Crisis in Consciousness (Kindle Locations 429-430). . Kindle Edition